जैनधर्म : सर्वप्राचीन धर्म-परम्परा

□ डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

[ज्योति निकुंज, चारबाग लखनऊ—२२६००१ (उ० प्र०)]

धर्मतत्त्व वस्तु स्वभाव का द्योतक है। वस्तु वास्तविक है, अनादि-निधन और शाश्वत है, अतएव उसका स्वभावरूप धर्म भी अनादि-निधन और शाश्वत है। जैन परम्परा में 'धर्मतत्त्व' की यही प्रकृत व्याख्या स्वीकृत है। इसी का पल्लवन जैन तत्वज्ञान में हुआ और उक्त स्वभाव की प्राप्ति के साधनोपायों को ही वहाँ व्यवहार धर्म की संज्ञा दी गई है।

किन्तु, सामान्य मानव-जगत् में नाना प्रकार के धार्मिक विश्वास रहते आये हैं और वे भिन्न-भिन्न खूँटों से बँधे हैं, जिसने अनगिनत धर्म-परम्पराओं को जन्म दिया। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आदि परिस्थितिजन्य कारणों से उनमें परस्पर वैभिन्न्य, अलगाव और मतभेद भी हुए और निहित स्वार्थों के कारण संघर्ष एवं वैर-विरोध हुए, भयंकर युद्ध एवं नर-संहार भी हुए। ये प्रक्रियाएँ चलती आई हैं, आज भी क्रियाशील हैं और शायद सदैव चलती रहेंगी। परिणामस्वरूप 'धर्म' के नाम पर जो विभिन्न परम्पराएँ दर्शन, मत, पन्थ, सम्प्रदाय आदि प्रचलित हैं, उनकी पूर्णता, श्रेष्ठता, प्राचीनता, संभावनाओं आदि की दृष्टि से तुलना भी की ही जाती है।

इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि किसी भी धार्मिक परम्परा की श्रेष्ठता उसकी प्राचीनता या अर्वाचीनता पर निर्भर नहीं होती। अनेक नवीन वस्तुएँ भी उत्कृष्ट एवं उपादेय होती हैं और अनेक प्राचीन वस्तुएँ भी निकृष्ट एवं निरर्थक सिद्ध होती हैं। तथापि यदि कोई धर्म अति प्राचीन होने के साथ ही साथ अपने उदयकाल से लेकर वर्तमान पर्यन्त जीवित, सक्रिय एवं प्रगतिशील बना रहा है, लोकोन्नयन में उत्प्रेरक, नैतिक उत्कर्ष एवं सांस्कृतिक अभिवृद्धि में सहायक रहा है और उनकी सम्भावनाएँ एवं क्षमताएँ भी अभी चूक नहीं गई हैं, तो उनकी आपेक्षिक प्राचीनता उसके स्थायी महत्त्व तभा उसमें अन्तर्निहित सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक तत्त्वों की ही सूचक हैं। दूसरे, किसी संस्कृति के विकास का समुचित ज्ञान तथा उसकी देनों का सम्यक् मूल्यांकन करने के लिए भी उक्त संस्कृति की जननी या आधार-भूत धर्म-परम्परा की प्राचीनता को खोजना आवश्यक हो जाता है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जैन परम्परा की प्राचीनता में शंका उठाने की और उसे सिद्ध करने की आवश्यकता ही क्यों हुई? जैनों की परम्परा अनुश्रुति तो, जबसे भी वह मिलनी प्रारम्भ होती है, सहज निर्विवाद रूप में उसे सर्वप्राचीन मानती ही चली आती है। इसके अतिरिक्त, अन्य प्राचीन भारतीय परम्पराओं में बौद्ध ही नहीं, स्वयं ब्राह्मणीय (हिन्दू) अनुश्रुति भी अत्यन्त प्राचीन काल से ही जैनधर्म की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करती चली आती है। इस विषय में भारतवर्ष के प्राचीन आचार्यों एवं मनीषियों में से किसी ने भी कोई शंका नहीं उठाई। तब फिर एक स्वतःसिद्ध एवं सर्वसम्मत मान्यता को नए सिरे से सिद्ध करने की क्या आवश्यकता हुई?

इसका कारण है। आधुनिक युग के प्रारम्भ में यूरोपीय प्राच्य-विदों ने जब भारतीय विद्या का अध्ययन आरम्भ किया तो उन्होंने भारतवर्ष के धर्म या धर्मों, संस्कृति, साहित्य और कला के इतिहास का नए सिरे से निर्माण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना आरम्भ किया। सृष्टिकर्त्ता-ईश्वरवादी सेमेटिक (ईसाई) विश्वास उनके संस्कारों में बसे थे, और आधुनिक युगीन वैज्ञानिकता एवं विकासवाद से उनकी बुद्धि पूरी तरह प्रभावित थी। परिणामस्वरूप वे इस धारणा को लेकर चले कि प्रत्येक परम्परा का कोई जनक, जन्मस्थान और जन्मकाल है और तभी से उसका इतिहास आरम्भ होता है। किन्तु वे इस तथ्य से अपरिचित रहे प्रतीत होते हैं कि विश्व व्यवस्था में सभी चीजें सादि-सान्त नहीं होती, वरन् अनेक ऐसी हैं जो अनादि-निधन होती हैं। अतएव उनकी धारणा थी कि प्रत्येक धर्म व्यक्तिविशेष द्वारा, क्षेत्रविशेष और कालविशेष में स्थापित हुआ होना चाहिए और उनकी इस धारणा का समर्थन बौद्ध, पारसी, यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि धर्मों के इतिहास से होता ही था, किन्तु वे सब ऐतिहासिक धर्म हैं, अतः उनके जनक, जन्म-स्थान और जन्म-तिथि होना स्वाभाविक हैं। इनके विपरीत, कुछ धर्म या संस्कृतियाँ ऐतिहासिक नहीं वरन् परम्परामूलक होती हैं और उनके संस्थापक या स्थापनाकाल का निर्णय नहीं किया जा सकता। सुदूर अतीत में जहाँ तक ज्ञात इतिहास की पहुँच होती है, उनका अस्तित्व पाया जाता है। उनके पथ में विकास और अवरोध, उत्थान और पतन भी आते रहते हैं, तथापि वे बनी रहती हैं, क्योंकि उनका मूलाधार मानव-स्वभाव होता है। अस्तु, प्रवृत्तिप्रधान वैदिक परम्परा से प्रसूत ब्राह्मण धर्म अथवा शैव-वैष्णवादि रूप तथाकथित हिन्दूधर्म जिस प्रकार परम्परामूलक और सनातन है, उसी प्रकार निर्ग्रन्थ श्रमण तीर्थंकरों द्वारा पोषित—संरक्षित निवृत्तिप्रधान आत्मधर्म अर्थात् जैनधर्म भी परम्परामूलक एवं सनातन है। वस्तुतः अपनी सहज संज्ञाओं एवं एषणाओं से प्रेरित संसारी प्राणी प्रवृत्ति में तो स्वतः लीन रहता है, किन्तु जब वह प्रवृत्ति अमर्यादित, उच्छृंखल, परपीड़क और अशान्तिकर हो जाती है तो उसे सीमित, मर्यादित एवं संयमित करने के लिए निवृत्ति मार्ग का उपदेश दिया जाता है, और यहीं से पारमार्थिक धर्म का प्रारम्भ होता है। अतएव जब से मानव या मानवीय सभ्यता का अस्तित्व है तभी से दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं इन्द्रिय-विषयों के पोषण के हित कर्मप्रधान प्रवृत्ति मार्ग भी है और उसके परिष्कार-परिमार्जन के लिए आत्मस्वभाव-रूप-धर्मप्रधान निवृत्ति मार्ग भी है—जैन धर्म उसी निवृत्तिमूलक अहिंसाधारित सदाचार-प्रधान आत्मधर्म का सदैव से प्रतिनिधित्व करता आया है।

उन आधुनिक युगीन प्रारम्भिक पाश्चात्य प्राच्यविदों की पकड़ में यह तथ्य नहीं आया, और जब उनका ध्यान जैन परम्परा की ओर आकर्षित हुआ तो उन्होंने उसे भी एक ऐतिहासिक धर्म मानकर उसके इतिहास की खोज प्रारम्भ कर दी। वे यहूदी और ईसाई धर्मों से तो पूर्ण परिचित थे ही, मुसलमान, बौद्ध और हिन्दू धर्म से भी पहले ही भलीभाँति परिचित हो चुके थे। अतएव हिन्दू, विशेषकर बौद्ध के परिप्रेक्ष्य में ही उन्होंने जैन-धर्म को देखा। उनकी पद्धति वर्तमान को स्थिर बिन्दु मानकर प्रत्येक वस्तु के इतिहास को पीछे की ओर उसके उद्गम स्थान या उदयकाल तक खोजते चले जाने की थी। जो तथ्य प्रमाणसिद्ध होते जाते और अतीत में जितनी दूर तक ले जाते प्रतीत होते वहीं वे विद्वान् उसका जन्म निश्चित कर देते। नए प्रमाण प्राप्त होने पर यदि उक्त अवधि और अधिक पीछे हटाई जा सकती तो वैसा करते चले जाते। स्वयं भारतीय जन किसी भी बात को कितना ही निश्चित, असन्दिग्ध और स्वयं-सिद्ध मानते हों, ये विद्वान् बिना परीक्षा और प्रयोग के उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते थे। अतः ऐसे सर्वविदित तथ्य यथा शक, विक्रम आदि संवतों का प्रवर्तनकाल, महावीर और बुद्ध की निर्वाण तिथियाँ, रामायण या महाभारत में वर्णित व्यक्तियों एवं घटनाओं की ऐतिहासिकता इत्यादि भी विवाद के विषय बने। अनेक पुरातन आचार्यों, ग्रन्थों, स्मारकों, पुरातात्त्विक वस्तुओं आदि के विषय में मत-वैभिन्न्य हुए। आज भी हैं और अनेक प्राचीन नरेशों एवं अन्य ऐतिहासिक तथ्यों के विषय में विवाद चलते ही रहते हैं कि उनका सम्बन्ध हिन्दू-धर्म से, जैनधर्म से अथवा बौद्धधर्म से है। अस्तु, जैनधर्म का स्वतन्त्र अस्तित्व एवं उसकी आपेक्षिक प्राचीनता और इतिहास भी विवाद के विषय बने।

१९वीं शताब्दी के प्रारम्भिक प्राच्यविदों द्वारा पुरस्कृत उपर्युक्त खोज पद्धति ही आज के युग की वैज्ञानिक पद्धति मान्य की जाती है। उसी का अनुसरण स्वदेशीय भारतीय-विद्याविद् एव इतिहासकार भी करते चले आ रहे हैं। बहुत अंशों में वह है भी एक युक्तिसंगत, प्रामाणिक, श्रेष्ठ पद्धति। इस परीक्षा-प्रधान बौद्धिक युग में प्रत्येक तथ्य को परीक्षा द्वारा प्रमाणित करके ही मान्य किया जाता है। जैनधर्म स्वयं एक परीक्षा-प्रधान धर्म होने का गर्व करता है, और इस परीक्षा पद्धति के द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही गत डेढ़ सौ वर्षों में वह शनैः-शनैः सातवीं शती ईस्वी में बौद्धधर्म की शाखा के रूप में उत्पन्न एक छोटे से गौण सम्प्रदाय की स्थिति से उठकर कम से कम वैदिक धर्म जितनी प्राचीन एवं एक सुसमृद्ध संस्कृति से समन्वित स्वतन्त्र तथा महत्त्वपूर्ण भारतीय धार्मिक परम्परा की स्थिति को प्राप्त हो गया है।

डॉ० हर्मन जेकोबी प्रभृति प्रकाण्ड प्राच्यविदों द्वारा बौद्ध एवं जैन अनुश्रुतियों के तुलनात्मक अध्ययन, परीक्षण एवं अन्वेषण द्वारा यह तथ्य सर्वथा प्रमाणित हो गया है कि जैन परम्परा के २४वें एवं अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर (ईसापूर्व ५९९-५२७) बौद्धधर्म प्रवर्त्तक शाल्वपुत्र गौतमबुद्ध के ज्येष्ठ समकालीन थे और वह प्राचीन जैनधर्म के मात्र पुनरुद्धारक थे, प्रर्वतक नहीं—जैनधर्म उनके जन्म के बहुत पहले से प्रचलित था और बौद्ध धर्म की संरचना में भी उसका प्रभाव रहा। बौद्ध-साहित्य में जैनधर्म की स्वतन्त्र सत्ता एवं आपेक्षिक प्राचीनता के अनेक साक्ष्य उपलब्ध हैं, कई पूर्ववर्ती तीर्थंकरों के भी इंगित हैं।

महावीर के पूर्ववर्ती २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ (ई० पू० ८७७-७७७) की ऐतिहासिकता भी सभी आधुनिक प्राच्यविदों ने मान्य कर ली है। भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के अनेक साधु महावीर के समय तक विद्यमान थे।

अब महाभारत में वर्णित व्यक्तियों एवं घटनाओं की ऐतिहासिकता भी स्थूल रूप से मान्य की जाने लगी है—उसके प्रधान नायक नारायण कृष्ण की ऐतिहासिकता में सन्देह नहीं किया जाता। अतएव अनेक विद्वानों का मत है कि यदि कृष्ण को ऐतिहासिक व्यक्ति स्वीकार किया जाता है तो कोई कारण नहीं कि उन्हीं कृष्ण के ताउजात भाई, २२वें जैन तीर्थंकर नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) की ऐतिहासिकता को स्वीकार न किया जाय। भगवान् पार्श्वनाथ के प्रायः समकालीन मध्य एशिया के खिल्दियन सम्राट नेबुचेडनजर के दानशासन प्रभृति कतिपय पुरातात्त्विक साक्ष्य भी तीर्थंकर नेमिनाथ की ऐतिहासिकता की पुष्टि करते हैं।

२१वें तीर्थंकर नमिनाथ का जन्म विदेहदेश की मिथिला नगरी में हुआ था और उनका एकत्व ब्राह्मणीय अनुश्रुति के विदेह जनकों के पूर्वज विदेहराज नमि से किया जाता है। कालान्तर में ब्रह्मवादी जनको द्वारा प्रेरित उपनिषदों की आत्मविद्या के मूल पुरस्कर्त्ता यह तीर्थंकर नमि ही माने जाते हैं।

अयोध्यापति मर्यादा पुरुषोत्तम राम का स्थान जैन परम्परा में अति सम्मानीय है, और उस युग के व्यक्तियों एवं घटनाओं का जो वर्णन जैन रामायणों में प्राप्त होता है वह ब्राह्मणीय पुराणों की अपेक्षा अधिक युक्तिसंगत एवं विश्वसनीय है। उस समय २०वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ का धर्मतीर्थ चल रहा था।

ब्राह्मणीय पुराणों में जैनधर्म और जैनों के अनेक उल्लेख प्राप्त हैं जो जैन परम्परा की आपेक्षिक प्राचीनता सिद्ध करते हैं। भागवत आदि प्रायः सभी मुख्य पुराणों में भगवान् ऋषभदेव को विष्णु का अष्टम अवतार मान्य किया है और उनका सम्बन्ध जैनधर्म से सूचित किया है। ऋषभदेव जैन परम्परा के प्रथम तीर्थंकर हैं।

ब्राह्मण परम्परा के सर्वप्राचीन ग्रन्थ स्वयं वेद में—ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि में ऋषभादि कई तीर्थंकरों तथा निर्ग्रन्थ जैन मुनियों, यतियों, तपस्वियों के अनेक उल्लेख हैं। यह तथ्य जैन परम्परा को प्राग्वैदिक सिद्ध कर देता है।

सिन्धुघाटी की प्राग्वैदिक एवं प्रागार्य सभ्यता के हड़प्पा में प्राप्त अवशेषों में दिगम्बर कायोत्सर्ग जिनमूर्ति का धड़ मिला है, और उसकी भी पूर्ववर्ती मोहनजोदड़ों के अवशेषों में प्राप्त मुद्राओं आदि से उस काल एवं उस प्रदेश में वृषभलांछन कायोत्सर्ग दिगम्बर योगिराज ऋषभ की उपासना के साक्ष्य मिले हैं। इस प्रकार सुदूर प्राग्वैदिक, प्रागार्य, प्रागैतिहासिक युग तक जैन परम्परा का अस्तित्व पहुँच जाता है, और ये संकेत इस धार्मिक परम्परा को सभ्य-मानव की सर्वप्राचीन जीवित परम्परा सिद्ध कर देते हैं।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org